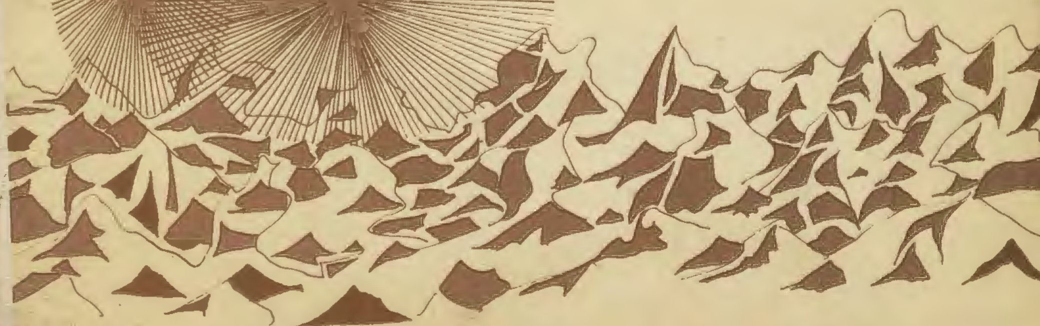
साधना

(काव्य संग्रह)

"लली"



साधना

(काव्य संग्रह)

तोरन देवी शुक्ल " लली "

प्रकाशक :

श्रीमती प्रेम शुक्ला
एल० डी० – 103 बी०, ओल्ड आर० डी० एस० ओ० कालोनी
मानकनगर, लखनऊ – 226011

मुद्रक :

अमित आफसेट, इन्द्रलोक, 257–गोलागंज, लखनऊ – 18.

श्रद्धा–सुमन



"मातु! तव श्री चरणों में, हम करते हैं, शत – शत प्रणाम।

जिनके शुभ आशीषों के प्रतिफल हम नित लहें ललाम।।

श्रद्धेया अम्माँ जी! यद्यपि आपका वियोग हम सांसारिक प्राणियों के लिये सदैव पीड़ादायक एवं असहनीय रहा है, किन्तु आपकी स्मृतियाँ, जो आज भी हृदय–पटल पर अंकित हैं, हमें निरन्तर प्रोत्साहन, बल एवं साहस देकर हमारा पथ–प्रदर्शन कर रही हैं। आपके शिक्षाप्रद उपदेशों के लिये हम सदैव आपके ऋणी तथा आभारी रहेंगे। आपकी प्रेरणा के फलस्वरूप ही हम अपने उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक पालन करने में समर्थ हो सके हैं।"

पुत्र–वधू होने के नाते मुझे उनके सम्पर्क में अधिक समय तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, फलतः उनके क्रिया कलापों, विचारों, भावनाओं तथा व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जानने का अच्छा अवसर मिला।

इसमें संदेह नहीं कि उनका व्यक्तित्व महान एवं असाधारण था। उनका जन्म उस युग में हुआ था जब बालिकाओं को पाठशाला भेजकर पढ़ाना अच्छा नहीं समझा जाता था। फलतः उन्हें अधिक शिक्षा का अवसर नहीं मिल सका, फिर भी उन्होंने घर पर ही शिक्षा प्राप्त करके जो ज्ञान अर्जित किया वह आश्चर्यजनक है। उनमें अलौकिक साहित्यिक प्रतिभा थी तभी तो उन्होंने 9 वर्ष की आयु से ही काव्य–रचना प्रारम्भ कर दी थी। 15 वर्ष की आयु में विवाह हो जाने के उपरान्त कुछ समय के लिये उन्हें अपनी प्रतिभा विकसित करने का स्वच्छन्द वातावरण न मिल सका। नवयुवकों को युद्ध–क्षेत्र में जाने को प्रोत्साहित करने वाली काव्य रचना के कारण उन्हें कतिपय कटु व्यंग वाक्य भी सुनने पड़े जिसके कारण उनके कोमल मन को ठेंस लगी, किन्तु वे इससे तनिक भी विचलित नहीं हुई। परिवार और समाज के बंधन उनकी काव्य कला को अवरूद्ध नहीं कर सके। उन्होंने पराधीन

देश के नवयुवकों को अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्र-प्रेम का संदेश देकर उनमें नव जागृति तथा चेतना उत्पन्न करके उन्हें अपना कर्तव्य पालन करने के लिये प्रोत्साहित किया। उस समय इस प्रकार के उद्‌बोधन की अत्यन्त आवश्यकता थी। उनकी साहित्य-साधना के फलस्वरूप ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सन् 1940 में उनके काव्य-संग्रह 'जागृति' पर सेकसरिया पुरस्कार प्रदान कर उनकी काव्य-प्रतिभा को अभिनन्दित किया। इसमें संदेह नहीं है कि यदि प्रारम्भ से ही उन्हें समुचित प्रोत्साहन तथा अपेक्षित सहयोग मिला होता तो वे साहित्य तथा समाज के विकास में और अधिक योगदान कर सकती थीं।

सर्वगुण सम्पन्न कुशल गृहिणी की तरह गृहस्थ जीवन के समस्त कार्यों को सुचारू रूप से चलाते हुये वे साहित्य-साधना में निरन्तर संलग्न रहीं। दिन में तो विभिन्न कार्यकलापों में व्यस्त रहने के कारण उन्हें एकान्त एवं शान्त वातावरण नहीं मिल पाता था, अतः रात्रि के समय उनका लेखन कार्य सम्पन्न होता था। यह भी उनकी एक विशेषता ही थी कि विभिन्न दायित्वों का निर्वाह करते हुये भी उनकी साहित्य-साधना कभी रूकी नहीं।

इसके अतिरिक्त संगीत कला का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। स्वर मधुर तथा सुरीला था। विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीत उन्हें भली प्रकार आते थे। इस प्रकार काव्य-कला तथा गायन-कला दोनों का सुन्दर समन्वय था उनमें।

उनमें विलक्षण प्रतिभा थी। विषम परिस्थितियों में भी धैर्य एवं साहस के साथ स्थिति का सामना करना उनके लिये कोई कठिन बात नहीं थी। उनका कार्यक्षेत्र व्यापक था। उन्होंने अपने को परिवार तक ही सीमित नहीं रक्खा, वरन् समाज तथा देश की भी सेवायें की। राष्ट्रव्यापी आंदोलन (स्वाधीनता संग्राम), जो अंग्रेजों के विरुद्ध चल रहा था, में भी उन्होंने सक्रिय भाग लिया। तत्कालीन स्थिति के अनुकूल उन्होंने जो काव्य-रचनायें नवयुवकों को प्रोत्साहित करने के लिये की, उनमें इसकी स्पष्ट झलक मिलती है। इसके अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन देने, बाल-विवाह तथा परदा प्रथा का विरोध करने के लिये भी अनेक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवा कर समाज में सुधार लाने की चेष्टा की।

उनमें सहिष्णुता, उदारता, परोपकार-वृत्ति, धार्मिकता आदि सद्‌गुण तो विद्यमान थे ही, साथ ही थी उनमें अपार ममता और दया। जीवन में कोई दुराव व छिपाव न था। ईर्ष्या, द्वेष तथा कलह की भावना तो लेशमात्र भी न थी। भावुक हृदय होने के कारण वे शीघ्र ही करुणा से द्रवीभूत हो उठती थीं। उनमें न तो अहं की भावना थी और न था पाखण्ड या दिखावा। उनका जीवन बड़ा सादा तथा सरल था। इसके अतिरिक्त भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति उनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। भारतीय रीति-रिवाज, पर्व, व्रत, अनुष्ठान आदि को वह बड़ी श्रद्धा के साथ मनाती थीं और उनका यही आदेश भी था कि प्रत्येक नारी को अपने रीति-रिवाजों तथा मान्यताओं को जीवित बनाये रखना चाहिये। इस क्षेत्र में नारी जाति का उत्तरदायित्व पुरुष जाति से कहीं अधिक बढ़कर है।

उन्होंने अपनी विद्वता का कभी प्रचार-प्रसार नहीं किया। 'सेकसरिया' पुरस्कार प्राप्त करने के लिये जब वे पूना गई थीं तब उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 29वें अधिवेशन के अवसर पर

जो कुछ कहा उससे साहित्य–सेवा के सम्बन्ध में उनके विचार व्यक्त होते हैं। उनके उद्‌गार इस प्रकार थे– "हिन्दी साहित्य के लिये मेरी सेवा कैसी है और कितनी है यह मैं नहीं जानती। मैं यह भी कहना नहीं चाहूँगी कि मुझे लिखते हुये कितना समय व्यतीत हुआ, परन्तु इतना अवश्य कहूँगी कि भारत की तथा हिन्दी भाषा की क्रांति के युग में मेरा जन्म हुआ और संभवतः परिस्थिति के कारण केवल एक ही आदर्श व सिद्धांत मेरे सामने रहा कि ऐसे अवसर पर राष्ट्र के लिये जो कोई जो कुछ भी कर सकता हो निरन्तर यथाशक्ति करता चले उसमें अपने किसी भी स्वार्थ सिद्धि को महत्व देना केवल दुर्बलता मात्र है और इसीलिये आज अधिकांश हिन्दी साहित्यिकों में अभिशाप की भाँति फैली हुई दलबन्दी एवं आत्म विज्ञापन से सर्वथा दूर रहने का प्रयत्न किया है"

उन्होंने इसी अवसर पर यह भी कहा– "हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'जागृति' को पुरस्कृत करके जीवन में पहिली बार मुझे यहाँ आने के लिये बाध्य किया है और आप जैसे विद्वानों एवं विदुषियों के सन्मुख अपनी उन रचनाओं को लेकर खड़ी किया है जिन्हें कभी–कभी प्रकाशित करा देने के अतिरिक्त मुझे अपने आप किसी को दिखाने में भी संकोच होता है। यह आप लोगों की उदारता एवं सहृदयता है और इसके लिये मैं आभार मानती हूँ।"

उपर्युक्त कथन से न केवल उनके विचारों पर वरन् व्यक्तित्व पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इनकी दूसरी काव्य–कृति 'साधना' सन् 1947 में ही पूर्ण हो गई थी। इसे प्रकाशित कराने के लिये प्रयत्न हो ही रहे थे कि सन् 1950 में इनके एकमात्र पुत्र श्री हरिहर नाथ शुक्ल 'सरोज' का असामयिक निधन हो गया। इस दुर्घटना से इनके हृदय को ऐसा आघात लगा कि इनकी चेतना विलुप्त सी ही हो गई। इस असहनीय दुःख से हृदय तथा मस्तिष्क पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि साहित्य साधना की तो सदैव के लिये इति हो गई। इन दारूण परिस्थितियों में 'साधना' का प्रकाशन कुछ समय के लिये स्थगित हो गया। 1960 में इनका निधन भी हो गया। अब घर में केवल मेरे पूज्य श्वसुर, मैं तथा मेरा पुत्र चि० मनोज ही थे। पूज्य श्वसुर वृद्ध थे, पुत्र छोटा था और मैं कार्यरत होने के कारण इस ओर समुचित ध्यान न दे सकी। अन्ततः पुत्र मनोज और सौभाग्यवती पुत्रवधू डा० नीरा के सक्रिय सहयोग से इस कृति का प्रकाशन अब संभव हो सका है। मेरे मन में बड़ी साध थी कि 'साधना' साहित्य रसिकों के समक्ष आये और इस युग संकल्प को फलीभूत होता देखकर मुझे संतोष है और यह सुखद विश्वास भी कि मेरी ममतामयी सास इस बिलम्ब को अनदेखा कर सदैव की भाँति अपना ममतामय आँचल इस परिवार पर बनाये रक्खेंगी। उन्होंने सदैव मुझे अपना स्नेह और आशीर्वाद दिया है और आज भी उसी की अपेक्षा है। कोटि कोटि प्रणाम तथा श्रद्धा सहित–

आपकी

नवम्बर, 1992 — बहू जी (प्रेम शुक्ल)

आमुख

छायावादी काव्यधारा के विकास में पन्त, प्रसाद, महादेवी, निराला, राम कुमार वर्मा और भगवतीचरण वर्मा के अतिरिक्त जिन कवयित्रियों ने भी महत्वपूर्ण योग दिया, उनमें श्रीमती तोरन देवी 'लली' (सन् 1897–1960) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे अपने युग की प्रतिनिधि कवयित्री हैं। उनकी रचनाओं में द्विवेदी युगीन बोध और छायावादी नवीनता, दोनों की झलक स्पष्ट है। 'लली' जी के मानस–पटल पर युग–जीवन के आघात–प्रत्याघात का जो स्पन्दन अंकित हुआ है, उसकी सफल तथा सशक्त अभिव्यक्ति उनके काव्य में हुई हैं। उन्होंने जीवन में हर्ष और विषाद की विभिन्न अवस्थाओं का गहराई से अनुभव किया तथा इन अनुभूतियों के कारण उनके काव्य में दार्शनिकता का पुट भी आ गया है।

'लली' जी के पूर्वज दिलवल, जिला उन्नाव (उत्तर प्रदेश) के निवासी थे। इनके पिता पं० कन्हैयालाल तिवारी आर० एम० एस० में सेवारत थे और इसी संदर्भ में वे कुछ समय तक बड़ौदा के पास मेहसाना नामक स्थान में भी रहे। मेहसाना प्राकृतिक दृष्टि से सुरम्य स्थान है और वहाँ तोरन वाली माता (देवी) का प्रसिद्ध मन्दिर है। 'लली' जी के पिता तोरन देवी के भक्त थे, इसी कारण उन्होंने अपनी पुत्री का नामकरण देवी के नाम पर ही किया। 'लली' जी का जन्म अपनी ननिहाल, ग्राम पिपरिया, जिला जबलपुर (मध्य प्रदेश) में श्रावण सुदी 12 सम्वत् 1953 वि० को हुआ। इनकी सम्पूर्ण शिक्षा घर पर ही हुई। इनके माता–पिता, मामा तथा नाना ने इनकी साहित्यिक प्रतिभा के विकास में विशेष रुचि ली। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी इन्हें प्रोत्साहित किया। पं० श्रीधर पाठक इनकी समस्या पूर्त्तियों से बड़े प्रभावित थे। 'रसिक मित्र', 'साहित्य सरोवर', 'प्रियम्वदा', 'रसिक रहस्य', 'गृह लक्ष्मी', 'स्त्री दर्पण',' मर्यादा', 'अभ्युदय', 'प्रताप', 'सरस्वती', 'भारतभगिनी', 'जाह्नवी' तथा 'कान्यकुब्ज' आदि पत्र–पत्रिकाओं में इनकी रचनायें समय–समय पर प्रकाशित होती रहीं। इन्होंने कुछ समय तक लखनऊ से प्रकाशित होने वाली 'त्रिवेणी' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया। सं० 1968 वि० में मिंथिलाधिपति महाराज कामेश्वर सिंह जी – प्रधान 'भारत धर्म महामण्डल' ने 'लली' जी को 'साहित्य–चन्द्रिका' की उपाधि से अलंकृत किया। इनका विवाह सं० 1986 में पं० कैलाशनाथ शुक्ल के साथ हुआ। इनके एकमात्र पुत्र श्री हरिहरनाथ 'सरोज' थे। दुर्भाग्यवश श्री 'सरोज' की मृत्यु सन् 1950 में हो गई। इस बज्रपात से 'लली' जी इतनी अधिक मर्माहत हुईं कि इनकी साहित्स–साधना को पूर्ण ग्रहण ही लग गया। पुत्र–शोक में विह्वल 'लली' जी ने अपनी लेखनी को विराम दे दिया। इनकी केवल एक ही रचना इसके बाद उपलब्ध होती है जो इनके शोकाकुल हृदय की मर्मान्तक पीड़ा की झलक देती है। 7 अगस्त 1955 को लिखी गई यह रचना इस प्रकार है –

तन ते दूरि सरोज भे, मन ते बिछुरे राम।

'लली' जगत में क्या करे, तन मन सब बेकाम।।1।।

पुत्रवधू, पौत्र मनोज तथा पौत्रवधू नीरा ने इस कृति के प्रकाशन का सत्संकल्प सोत्साह क्रियान्वित करके अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है।

'साधना' में साठ गीत हैं। यह अनुभूति प्रधान काव्य-कृति है। इनके कुछ गीतों में जीवन के सुख–दुःख की धूप–छाँह है। कुछ गीतों में चिन्तनशीलता है। 'लली' जी जितनी बड़ी कवयित्री थी, उससे कहीं अधिक बड़ी वात्सल्यमयी माँ तथा स्नेहमयी दादी थीं। 'साधना' की प्रथम रचना उनके वात्सल्यपूर्ण उमड़ते हृदय का ही प्रमाण है। 'लली' जी ने अपने युग के सभी प्रमुख विषयों को 'साधना' में स्वर दिया है। सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि ने अपने साहित्य में सामाजिक जागरूकता के गीत गाए, नारी को उद्‌बोधन दिया, मातृत्व की चिरसाध की पूर्ति के लिए वात्सल्य भाव से सिक्त कविताएँ लिखीं, जीवात्मा और परमात्मा के चिर सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिये रहस्यवादी रचनाएँ कीं। 'साधना' में ये सभी भावनाएँ प्रभावी रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। उसमें एक मुख्य स्वर राष्ट्रीयता तथा देशप्रेम का है.। 'मोहन' (गांधी जी), 'पतितपावन' (गांधी जी), 'गांधी गौरव' तथा 'कांग्रेस' नामक कविताओं से 'लली' जी का स्वदेशानुराग व्यक्त होता है। 'त्रिवेणी', 'वृन्दावन', 'अशरण शरण', 'दीनबन्धु' आदि रचनाएँ उनके भक्त हृदय का परिचय देती है। 'मीराबाई', 'श्री गुरुनानक देव जी' तथा 'श्री गुरू गोविन्द सिंह जी' शीर्षक कविताओं के माध्यम से कवयित्री ने देश की महान विभूतियों के चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित किये हैं। 'कृषक' नामक कविता में कवयित्री की विचारधारा पर प्रगतिवाद का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। 'मेरी अम्मा' उनकी स्वर्गवासी माँ पर आधारित कविता है।

इस संग्रह के अनेक गीतों की रचना प्रेम के ताने–बाने से ही हुई है और उनमें प्रेमजन्य सुख, दुःख, उपालम्भ की स्पष्ट झलक है। उनके शृंगार गीतों में सर्वत्र कोमलता, शालीनता एवं संयम का निर्वाह है। यत्र–तत्र छायावाद और रहस्यवाद का प्रभाव भी इनके गीतों पर दृष्टिगोचर होता है। 'लली' जी ने काव्य का सृजन किसी वाद विशेष के प्रचार की प्रेरणा से नहीं किया। आत्माभिव्यक्ति के आनन्द के लिये ही उन्होंने काव्य–रचना की है। इस संग्रह के गीतों की प्रमुख विशेषता है, भावनाओं की सहज, अकृत्रिम, अकलुष और मधुर अभिव्यक्ति। भाषा की सरलता और सहजता ने उनके गीतों के शिल्प पक्ष को उदात्त बना दिया है। इन रचनाओं से कवियित्री के उदार दृष्टिकोण और भावुक मन का सुन्दर परिचय मिलता है। भाव और कला तथा शिल्प पक्ष की बहुमुखी विशेषताओं के कारण महिला गीतकारों में 'लली' जी का जो विशिष्ट स्थान है, यह संग्रह उसे और अधिक भव्यता तथा गरिमा प्रदान करेगा, ऐसा विश्वास है।

प्रभाकर शुक्ल
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

दीपावली, 1992

विषय-सूची

*

तोरन देवी शुक्ल "लली"
साहित्य चंद्रिका

15, लूकरगंज प्रयाग
25 अगस्त, 1947

प्रिय मनोज,

अपने जीवन प्रभात में मैंनें जिस प्रिय की आराधना की उसका विस्तार समस्त विश्व में था, वह वाणी के द्वारा देश प्रेम के रूप में प्रस्फुटित हो उठा।

मेरा लक्ष्य सदैव आशा की ओर रहा जो मुझे पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला था। हाँ, तो निरन्तर साधना एवं आराधना के बदले में एक दिन वही मेरा चिर परिचित, अचिन्त्य, अनिंद्य, अजर एवं अमर प्रिय साकार होकर पौत्र के रूप में मेरी गोद में आ गया। और वह तुम हो मनोज।

इतने दिनों तक राष्ट्र वन्दना करते करते आज देश को स्वतंत्रता भी मिल गई। अब मेरी प्रसन्नता उस सीमा पर है जहां भाषा मूक हो जाती है। तुम धन्य हो जगदीश्वर।

आज से आठ वर्ष पहिले मैंने "जागृति" अपने पूज्य पिता जी को समर्पित की थी जिससे मेरी श्रद्धा की रक्षा हो सके, और आज यह "साधना" तुम्हारे सुन्दर, सुकुमार बाल करों में समर्पित हैं जो किसी दिन बलिष्ठ एवं उदार बनेंगे और जहाँ मेरे स्नेह की रक्षा हो सकेगी। परमात्मा तुम्हें सुखी तथा चिरंजीवी करे।

तुम्हारी

आजी
25 अगस्त ,1947

"पंडित मनोज"

ये हैं पंडित प्यारे मनोज,
हैं आँखों के तारे मनोज।
ये शुक्ल बंश के उजियाले,
सुन्दर प्रसन्न भोले भाले,

दादा के स्नेह दुलारे हैं, दादी के प्राण सहारे हैं;
सुन्दर हैं सबके प्यारे हैं अम्मां के मन उजियारे हैं;

शैशव के हैं साकार ओज;
पंडित मनोज पंडित मनोज।

तेजस्वी हो, विद्वान बनो धनवान बनो बलवान बनो;
दुनियाँ के व्यक्ति महान बनो माता के सद्अभिमान बनो;

कवि लावे उपमा खोज खोज;
चिरजीवी हो पंडित मनोज।

जीवन -सर का सुन्दर सरोज, जिससे मैंने पाया मनोज;
भगवान दया की दृष्टि रहे, सुख सम्पत्ति की नव वृष्टि रहे;

युग युग जीवे सुख लहें रोज;
प्यारे मनोज पंडित मनोज।

"लली"

त्रिवेणी

पतित पावनी ! अब फिर करदे पतितों का उद्धार।
एक बार पावन हो जावे यह कलुषित संसार।
या तेरे तट पर रवि तनये ! मोहन करे विहार,
सुर, नर, मुनि विस्मृत हो जावें उनकी सुछबि निहार।
वीणा वादनि जननि शारदे ! वीणा पुनः सम्हार,
जगती तल में आत्म ज्ञान की गूंज उठे झंकार।
अधमोद्धारिणि ! भवभय हारिणि ! मंगलमय गुण श्रेणी।
निज चरणों में रति, मति, धृति दे जगदम्बिके त्रिवेणी।।

बृन्दावन

ओ बृन्दाबन के सघन कुंज, ओ छटा, सिंधु ओ शान्तिधाम!
उनकी अनवरत प्रतीक्षा में रखते अक्षुण्ण सुषमा ललाम।

वे वृक्षलतायें पृथ्वी तक–
झुक झुककर ऐसी घनी हुई,

ऊंची लख मचल न जाये कहीं घुटनों से चलते हुये श्याम।

या बंशी ध्वनि का सुमधुर स्वर–
उस सुघर कुंज बन में भरकर;

गौओं का प्रेम परखने को छिप जायं कहीं कौतुकी श्याम।

या छिपकर रीझ खीझ मधु से–
मिश्रित दधि गोरस आशा में;

अनजाने ही लुट जाँयं और सब कहें चोर है चपल श्याम।

बिरहाकुल ब्रजबालाओं वा
राधा सी प्रेम पुजारिनि का

क्षण ही भर मन बहलाने को तेरा अणु अणु बन जाय श्याम।
ओ बृन्दावन तुम धन्य 'लली'
अपलक रहकर पथ जोह रहे ,

ना जाने किस युग किस क्षण में बंशीधर बन आ जाँय श्याम।

संदेश

(1)

उन पर ही जीवन न्यौछावर, जिनका उज्जवल पुण्य प्रताप ।

जिन्हे न भेद सका जगती का
दुख शोक दारूण संताप ।।

जिनकी बाट जोहती आशा, जिनसे शंकित होता पाप ।

जिनके चरणों पर श्रद्धा से
नत मस्तक हो जाता आप ।।

उनकी ही सेवा में मेरा यह संदेश सुना देना ।

यदि जाने पाऊँ तो उनके
चरणों तक पहुँचा देना ।।

(2)

यह कैसा गुणगान तुम्हारा तुमसे ही कहने आऊँ ।
किन्तु न कहकर किसी कली सी कहीं न मैं मुरझा जाऊँ ।।
मन मेरा सुकुमार खिलौना इसे सुरक्षित कर पाऊँ ।
तेरा ही श्रृंगार सजा विस्मय विमुग्ध हो हर्षाऊँ ।।
इसी सरलता या अबोधपन पर किंचित मुस्का देना ।
पद पद्मों पर अमित भक्ति की यह अन्जलि अपना लेना ।।

(-10-1932)

मोहन (गांधी जी)

मोहन ! तमसाच्छन्न जगत में अद्भुत गति से तुम आये।

विश्व विश्व व्यापी संकट का
वहन करे किस विधि यह भार,
जो न पा सके आज, अयाचित
मोहन का सम्मोहक प्यार।

इस खल,बल, छलपूर्ण जगत में शान्ति दूत बन तुम आये।

मानव आज मात्र मानव का
विकट चाहता है संहार,
कौन कहे इस आकांक्षा की
होगी विजय रहे या हार।

तुम तो अमर अहिंसा का ही सत्य रूप लेकर आये।

जब विस्मृत हो चला
महत् पुरूषों का उपदेशामृतसार,
शनैः शनैः मिटता जाता था,
यहाँ बुद्ध निर्मित संसार।

तब मानवता का सुन्दर-तम चित्र दिखाने तुम आये।

क्यों न निहारे विश्व तुम्हें
निज उर में कर आशा संचार,
जननी जन्मभूमि हो जावे
आज न क्यों तुम पर बलिहार?

सत्य, सत्व वा सतयुग का ही पाठ पढ़ाने तुम आये ।

तुम तो अजर अमर हो भगवन।
वैसे ही यश का विस्तार।
कर बन्दना धन्य हो सेवक
सुनें जननि की जयजयकार ।

'लली' हमें भी राष्ट्र जगत में अमर बनाने तुम आये।
मोहन! तमसाच्छन्न जगत में अद्‌भुत गति से तुम आये।

(2-10-1939)

पतितपावन (गांधी जी)

बन्दना करती तुम्हारी, देव ! यह सौभाग्य मेरा।
यद्यपि वैभव में बढ़े हैं अन्य कितने देश सारे,
ज्योति छिटकाते रहे बहुधा जहाँ अगणित सितारे,
किन्तु पावन कर्म भू में
पूर्ण चन्द्र प्रकाश मेरा।
छाँह प्रिय पाकर तुम्हारी शान्त हैं कितने विकृत मन,
पतित पावन हो तुम्हीं पावन तुम्हारे हैं पतित जन।
आज ऐसा विश्व का
मोहन बना अभिमान मेरा।
क्यों न मस्तक देश का ऊँचा उठे, बन अंशुमाली,
श्रेष्ठ अनुपम रत्न की प्रस्फुटित है आभा निराली।
जननि भी हो स्नेह गदगद,
कह रही यह वत्स मेरा।
पूर्ण जागृत हो चुकी हैं, सुप्त आशायें मनोहर,
साजती नव वेष धरणी आज है आकाश सुन्दर।
राष्ट्र हँस कर कह रहा है
देख स्वर्ण प्रभात मेरा।
तुम अमर हो, कीर्ति गाथायें अमर होंगी तुम्हारी,
शक्ति पाती ही रहे तुम से सदा यह सृष्टि सारी।
धन्य हूँ पाकर तुम्हें,
है धन्य भारत देश मेरा।

(1938)

प्रेम का इतिहास तूही

आज मोहन विश्व का है जननि का प्रिय दास तूही।
प्रेम का इतिहास तूही।
नेक विस्मृत हो रहीं वे दुख भरी निर्मम कथायें,
विहँसती सी कर्म तरू पर बढ़ चली आशा लतायें,
देश की विपदा निशा में,
चन्द्र का आभास तू ही।
वन्दना करता तुम्हारी प्रेम ही साकार होकर,
पद दलित रजकण चमकता आज उर श्रृंगार होकर,
आत्मा की विमलता का
है महा उल्लास तू ही।
कर्म रत का पथ प्रदर्शक ज्ञानियों का धर्म है तू,
सहज पावन जन हृदय के प्रेम का ही मर्म है तू,
सुदृढ़ साहस सैनिकों का
शक्ति का मृदु हास तू ही।
अजर होकर तुम रहो यश भी रहेगा अमर होकर,
पूज्य जननि पदाम्बुजों पर मन रमेंगे भ्रमर होकर।
आज कितने प्राणियों का,
मधुर मधुर विकास तू ही।

(23-8-1937)

गाँधी गरिमा

कितनी आशा कितनी श्रद्धा कितना विश्वास सजाने में,
कितना वैभव कितना गौरव गाँधी की गरिमा गाने में ;
कितना साहस उल्लास भरा आदेशों के अपनाने में;
हे देव ! उसे कैसे रच दूँ शब्दों के ताने बाने में ?

जग जीवन के पहिले क्षण में,
जननी से पहिला परिचय था;
परिचय भी एक अलौकिक सा,
यह तन यह मन सब निर्भय था;
जब आँख खुली कुछ चेत हुआ
जननी जीवन बंधनमय था;
वेदना विकलता विफल रोष
मन में भय मिश्रित विस्मय था;

कितनी लज्जा, संकोच, व्यथा, अपना परिचय बतलाने में।
हे देव ! उसे कैसे रच दूँ शब्दों के ताने बाने में ?

ऐसे ही में तुम मिले और,
सौभाग्य हमारा जाग उठा,
धन सत्ता के मदमत्तों के प्रति
एक विचित्र विराग उठा;
कुछ दलित पतित कुछ थकित व्यथित,
जन का सोया अनुराग उठा;
हृदयों के कोने कोने से
फिर सत्य अहिंसा राग उठा;

कितना गौरवान्वित हुआ राष्ट्र तुम जैसा धन अपनाने में;
हे देव ! उसे कैसे रच दूँ शब्दों के ताने बाने में ?

(24-8-1944)

वैदेही

योगिराज श्रेष्ठ थे विदेह मिथिलाधिपति
शासक नरेश न्याय धर्म अधिकारी थे,
शंकर के भक्त क्षात्र धर्म में सशक्त सदा,
वीर नर रत्न प्रजाजन हितकारी थे,
विप्रकुल सेवक थे धेनुवंश पालक थे
सबके हितू थे सबको ही सुखकारी थे,
वे ही महामाया आदि शक्ति महारानी
वेदेही के जमक पितृपद अधिकारी थे। ।।1।।
स्वच्छ करने के लिये यों ही जब जानकी ने
अनायास शंकर का धनुष उठा लिया
चौंकि महाराज और एक प्रण से ही ,
सारे बल अभिमानियों का बल दिखला दिया ;
वे ही वैदेही राम परम सनेही मान ,
गौरी पद पद्मों पर मस्तक झुका दिया ;
जिनके स्वरूप सौन्दर्य सुकुमारता पै
राम से ब्रती ने अपनत्व को भुला दिया ।।2।।
सीता रवि रश्मि सी बधू को रघुबंश कुल पाकर,
जगत में प्रकाशमान हो गया
कहें भवितव्यता कि कूटनीति कैकेयी की,
कैसे अमी सिंधु में हलाहल सा बो गया
राम राज्य तिलक के क्षण में ही
राम बने तापस उदासी बनवास उन्हें हो गया

सीता चली साथ लक्ष्मण अनुगामी बने

अवध नरेश का अथाह सुख सो गया ।।3।।

वन में अकेली श्री वैदेही के हरण हेतु

रावण बली को भिक्षु भेष धरना पड़ा :

नारियों की रक्षा हित वीर धर्म पालने को जरठ जटायु को भी युद्ध करना पड़ा ;

लंका जब पहुँची अवध महारानी

तब रावण को कौशल अनेक करना पड़ा;

बंदिनी अकेली किन्तु अडिग सती के ,

सत, तेज, तप सम्मुख सशंक डरना पड़ा ।।4।।

बंदिनी थी अबला थी निपट एकाकिनी थी

किन्तु मन में भी भय किंचित न लाती थी;

राम जी की बाँह या कि तेरी असिधार

होगी मेरा कंठहार हो निशंक बतलाती थी;

रावण हुआ था बुद्धिहीन दुष्ट देख यह

भोजन न खाती नींद नयनों में न लाती थी;

अग्नि की परीक्षा सुन कातर हुये थे सब

केवल वही थी जो निसंक मुसकाती थी।।5।।

लोक अपवाद से सभीत हुये रामचन्द्र

सीता ही अकेली बनवासी फिर हो गई;

वहीं पर लवकुश कुमार जन्में थे

कुटी ऋषि बाल्मीकि की अवश्य धन्य हो गई;

यज्ञ अश्वमेध में उन्हीं दो बालकों से

मानो सारे वीर पुंगवों की श्रीहत सी हो गई;

एक बार राम ने बुलाना फिर चाहा

किन्तु सीता आदि शक्ति आदि शक्ति रूप हो गई।।6।।

आदि शक्ति माया लक्ष्मी की महाछाया
पथ सबको दिखाया अबला की धरी देही थी
रूप की उजागरी थी शील नेह आगरी थी
प्रीति रीति नागरी थी मंजुला सदेही थी;
बाहुबल धारिणी हठीली स्वाभिमानिनी थी
धर्म कर्म सत्यता की परम सनेही थी;
जनक दुलारी लवकुश महतारी
राम जी की प्राण प्यारी थी वही तो वैदेही थी।।7।।

(13-2-1943)

मीराबाई

मीरा गिरधर दीवानी थी प्रेमनगर की रानी।
तुमने किस विधि था जाना गिरधर गोपाल रिझाना।
कह दो मैं हूँ अज्ञानी, जो प्रेम नगर की रानी।
तुमको तो था जग झूठा, इस ही बल पर विष घूंटा।
यह दुनियां थी अभिमानी, तुम प्रेम नगर की रानी
जग में जो अजर अमर हो, उसको फिर किसका डर हो।
विषधर लखकर मुसकाती , वह प्रेम नगर की रानी
तुमको कैसी बाधा थी वे मोहन तुम राधा थी
वह प्रेम तत्व के ज्ञानी तुम प्रेम नगर की रानी।

श्री गुरू नानक देव जी

कार्तिकी पूर्णिमा विमल,
चतुर्दिक सुधा सुधाधर बरसाये;
सोलहों कला से पूर्ण,
गुरू नानक जगती के कहलाये।

जाना था रजनी ने शशि ने,
जाना था स्वयं विधाता ने;
जाना पंडित ज्योतिषियों ने,
फिर पूज्य पिता वा माता ने।

जाना जनता के नायक ने,
आनन्दित हो बलि बलि जाये;
देखा जब श्री मुख की रक्षा,
करता फणीश फण फैलाये।

जाना फिर दीनों हीनों ने,
उन ममता के अधिकारी ने;
जाना दुर्लभ सौभाग्यवती
उस नव विवाहिता नारी ने।

फिर जग ने जाना अंधकार में,
ज्योति जगाने यह आये;
सोलहों कला से पूर्ण गुरू नानक
जगती के कहलाये।

जो है महान वह कहाँ रुका,
जग की मायावी बातों से?
जो है महान वह कहाँ रुका,
निर्दय जग के आघातों से?

जो है महान वह कहाँ रुका,
जीवन के झंझावातों से?
जो है महान वह कहाँ रुका,
नवघात और प्रतिघातों से?

जो है महान उसका पथ भी,
निर्विघ्न स्वयं ही बन जाये;
सोलहों कला से पूर्ण गुरू नानक
जगती के कहलाये।

उस महागुरु के हेतु,
विश्व यह एक सघन परिवार बना
वह साधक उसका साधक था,
जो स्वयं आप करतार बना।

किस मन्दिर में, किस मस्जिद में,
वह कभी कहीं साकार बना?
वह उसका रहा सदैव यहां,
केवल जिसका आधार बना।

वह उसी परम पावन प्रभु का,
संदेश सुखद लेकर आये
सोलहों कला से पूर्ण गुरू नानक
जगती के कहलाये।

है प्राणिमात्र की एक जाति,
है एक धर्म, है एक कर्म;
दुनियाँ ने क्यों समझा अनेक,
पाया न एक का एक मर्म।

अबलों पर ममता परम धर्म,
उद्दंडों से डरना अधर्म;
है कर्मक्षेत्र सत्कार्य करो
केवल अकर्म ही है अकर्म।

यह मर्म 'लली' गुरू वाणी का,
संसार युगों तक यश गाये,
सोलहों कला से पूर्ण गुरू नानक
जगती के कहलाये।

(28-10-1941)

श्री गुरू गोविन्द सिंह जी

हैं पूज्य गुरू गोविन्द सिंह
माता के अमर दुलारों में;

उस महापुरुष का जन्म हुआ,
माँ गोद लिये भरपूर हुई;
अबलों की चिन्ता चूर हुई,
सब जननि वेदना दूर हुई;

इस हिन्द देश को गर्व हुआ,
जग उठी रक्त में स्फूर्ति नई;
वह अद्‌भुत अनुपम लाल लिये,
माँ सुख से ही भरपूर हुयी।।

गा उठी प्रकृति, खिल गया पुरुष,
आनन्दित जय जयकारों में;
गोविन्द सिंह गोविन्द सिंह,
बज उठा बीन के तारो में।

फिर मोहमयी माया ने,
जग पर श्याम आवरण डाल दिया,
शासक शासित के बीच,
निपट निर्ममता का जंजाल किया,

सबलों ने सत्ता के मद में,
जनता पर घातक वार किया;
कुछ भी न विवेक रहा जिनको,
उपकार या कि अपकार किया;

निर्बल की रक्षा कौन करे,
अब भीषण अत्याचारों में ?
गोविन्द सिंह गोविन्द सिंह
गूंजा अब आर्त पुकारों में।

जिसकी वाणी सुन, अलस,
वीरता, शक्ति रूप धर कर आई;
कच, कच्छ, कड़ा, कंघा, कृपाण ले,
सुभट बने भाई भाई।

जिसके सुत के बलिदानों पर,
बज गई द्वार पर शहनाई;
जिसके शिष्यों में, सवा लाख पर
एक वीर की बन आई।

उसके सम्मुख आ, चकाचौंध सा
शत्रु हुआ हुंकारों में;
गोविन्द सिंह गोविन्द सिंह,
झनझना उठा असिधारों में।

तुम वीर प्रसविनी के सपूत,
दुर्धर्ष शक्ति के अनुरागी;
निज सुत, दारा, परिवार लिये,
तुम योगिराज अनुपम त्यागी;

धन, जन, वैभव, ऐश्वर्य बीच,
तुम वीतराग तुम वैरागी;
तुमको पा भारत देश धन्य
है सिक्ख धर्म भी बड़भागी;

हम भी कृतार्थ हैं वाह गुरू,
तेरी ही जयजयकारों में;
हैं पूज्य गुरू गोविन्द सिंह,
माता के अमर दुलारों में।

(24-11-1941)

काँग्रेस

तुम भारत भाग्य विधात्री हो कितने जन हैं यह जान सके,
तुम दयामयी तुम शक्तिमयी कवि भी सब सद्गुण गा न सके।
तुम बिस्तृत हो विश्वास लिये आदर्श अहिंसा आज तुम्हीं,
वे अटल, अजर आलस्य रहित जन जो तुमको पहिचान सके।
तुम भेद रहित उपभेद रहित बस एक रहस्य तुम्हारा है,
सेवक है ऐसा कोई न जो तेरे चरणों तक आ न सके।
तुम हो भारत उर हार और भारत की सत्य पुकार तुम्हीं,
कोई भी तेरी शरण गहे बिन सत्य सत्व को पा न सके।
जो विमुख हुये वे विफल रहे आकुल होकर पथ खोज रहे,
वे अखिल विश्व में खोज थके तेरे वैभव तक जा न सके।
तुम एक अमर संगीत बनीं भारत बीणा के मधु स्वर में,
हिंसा लोलुप संसार आज वह मधुमय स्वर सुन पा न सकें।
अभिमान आत्म सम्मान सरलता सदाचार की केन्द्र तुम्हीं,
समता विद्यालय अखिल विश्व का कोई भी दिखला न सकें।
तुम दृढ़ता की प्रतिमूर्ति और तुम स्वतंत्रता की देवी हो,
नव यौवन भी यदि कायर हो चरणों पर शीस झुका न सके।
तुम अमित शक्ति की दात्री हो प्रिय भारत भाग्य विधात्री हो,
फिर भी कितने तेरे ही जन अब तक न तुझे पहिचान सके।
तापस जन का तप सफल बने भारत जग का आदर्श बने,
मिल जाय ध्येय अविलम्ब 'लली' यदि प्रतिजन तुझको जान सके।

(6-3-1940)

कृषक

देश के आधार हो तुम।

दैन्य दुर्बलता ग्रसित हो, संगिनी दारूण व्यथायें,
कौन कह सकता तुम्हारी आज की दुख मय कथायें।
श्रान्त हो, उद्भ्रान्त हो, किस हेतु बन्धु उदार हो तुम ?
देश के आधार हो तुम।

कौन हो तुम ? कौन जाने, जब न अब तक जान पाये,
दूर ही तुमसे रहे पर तुम रहे उर से लगाये।
मूढ़ हो या ज्ञानियों में या क्षमा साकार हो तुम ?
देश के आधार हो तुम।

मौनता ही में तुम्हारी कौन नव रव भर रहा है,
यह जगत निष्ठुर तुम्हारी चिन्तना क्यों कर रहा है?
आज कैसे देश भर में स्वयं एक पुकार हो तुम ?
देश के आधार हो तुम।

धीर, सहज, उदार मेरे ! वीरता में हो न संशय,
आज पाना चाहता है जग तुम्हारा सत्य परिचय।
देश के दुर्बल कृषक या राष्ट्र के विस्तार हो तुम ?
देश के आधार हो तुम।

*

माँ : कमले

माँ कमले : आह्वान तुम्हारा है किन मन्त्रोच्चारों में;
कौन साधना कौन अर्चना किन आचार विचारों में?

तुम्हें बुलाने की स्वर लहरी किस वीणा के तारों में;
अरी जननि तुम रीझ सकोगी किन मानस उद्‌गारों में?

भारत के रक्षक सागर की बड़ी लाड़िली कन्या हो,
भारत के ही वे नारायण जिन्हें वरण कर धन्या हो

भारत के घर घर पूजा हित महिमामयी अनन्या हो
भारत की सन्तान तुम्हें अब किस प्रकार पा धन्या हो। ?

कहते है माँ तुम रूठी हो, जननि आज तक कब रूठी;
मैं अपना विश्वास बदल दूँ या मानूं दूनियाँ झूठी?

माता रूठ सके सन्तति से यही कल्पना है झूठी;
जननि मनाती रही सदा ही रुठी तो सन्तति रूठी।

माँ बोली, उद्योग परिश्रम 'लली' सत्य आचारों में,
रहती हूँ मैं बुद्धिमान के विस्तृत वृहत विचारों में।

सद्‌भावना आत्मनिर्भरता की सुन्दर झंकारों में
और प्रतीक्षा सदा तुम्हारी करती हूं व्यापारों में।।

(9-8-1942)

राखी

अंडमान के बन्धु प्रवासी पिंजर बद्ध सिंह सन्तान।

जाग उठा क्यों आज अचानक, कब का दबा हुआ अभिमान ?

दुखित चकित हूँ बहुत व्यथित हूँ गा न सकूँ करूणा का गान,

सुन सुन करके नित्य तुम्हारा अनशन का सा त्याग महान।

ओ आशाओं के प्रतिपालक ! आशाओं को छोड़ दिया,

या निर्बल कायर दुनियां से उकता कर मुंह मोड़ लिया ?

भैया ! तुम्हें भेजती राखी कर लेना सादर स्वीकार।

जननी जन्म भूमि का फिर भी आकर तुम करना उद्धार।

यह–तेरे माथे की रोली रखले जीवन की लाली।

प्रिय माता के लाल लाड़ले ! तुम रखना भारत लाली।

यही चार चावल अक्षत के हों तेरे दृढ़ कवच अपार।

कोई शक्ति न रोक सकेगी वीर बन्धु की जय का द्वार।

वीर बन्धु ओ राज बन्दियों ! इस राखी में बंध जाना।

कारा से प्रभु मुक्त करेंगे आनन्दित हो घर आना।

*

खेल

माँ! तुम्हारे चरण तल पर क्यों न मैं ही खेल जाऊं?
इस हृदय की साध, कब? कैसे? कहाँ? किसकों सुनाऊं?

आज रवि शशि में, भ्रमित जग
देखता उत्तप्त यौवन,
आ रही अब प्रकृति निशि
सन्ध्या, उषा नव प्रेयसी बन;

इस प्रणय के सघन तम में ज्योति तेरी ही जगाऊं।
माँ तुम्हारे चरण तल पर क्यों न मैं ही खेल जाऊं?

गोद का ऋण रख, अरे!
यह प्रेम का अभिमान कैसा??
बेदना भूले तुम्हारी,
प्रिय विरह का गान कैसा?

विमल प्रेम प्रसून, पावन पद्म पद पर मैं चढ़ाऊं।
माँ तुम्हारे चरण तल पर क्यों न मैं ही खेल जाऊं।।

शक्ति दे माँ आज देखूं
मैं अमल सौन्दर्य तेरा,
देख मायावी जगत मन
डिग सके तिल भर न मेरा;

पा सकूं अमरत्व, पर सन्तान तेरी ही कहाऊँ।
माँ तुम्हारे चरण तल पर क्यों न मैं ही खेल जाऊँ।।

विश्व का हूं विश्व भर को
जननि गुण गौरव सुनाऊँ,
धवल यश सुन सुन तुम्हारा,
अपरिमित आनन्द पाऊँ,

मित्र हूं मैं विश्व का तेरा उचित आदेश पाऊँ।
माँ तुम्हारे चरण तल पर क्यों न मैं ही खेल जाऊँ ?
इस हृदय की साध कब ? कैसे ? कहाँ ? किसकों सुनाऊँ?

(24-10-1941)

*

गेय गीत

बस एक ध्येय माँ ! एक ध्येय;
तेरे चरणों का एक ध्येय।

तू मुखर बने या मौन रहे, मैं विकल रहूं तू कुछ न कहे,
जीवन शत झंझावात सहे, पर मन मेरा कर दे अजेय,

तेरे चरणों का एक ध्येय।

माँ । नित्य शक्ति तू ही तन में सद्भक्ति सत्य की तू मन में।
अनुरक्ति देश की तन मन में, गा उठे धरातल गीत गेय,

तेरे चरणों का एक ध्येय।

पाऊँ तेरी ही परम स्फूर्ति, देखूँ तेरी ही दिव्य मूर्ति,
सुन लूं मैं तेरी धवल कीर्ति, सन्तति को भी क्या है अदेय;

तेरे चरणों का एक ध्येय।

तू ही बतला दे मैं क्या हूँ, तेरी ही सफल साधना हूँ,
तेरी ही एक भावना हूँ, तू स्वयं 'लली' बन जा अजेय।

तेरे चरणों का एक ध्येय।
बस एक ध्येय माँ! एक ध्येय।

(21-10-1940)

माँ !

माँ!बल बैभव सब तेरा,

बस प्रेम धर्म है मेरा।
तेरी ही ममता प्रतिफल हो, श्री चरणो में भक्ति अचल हो,
केवल तेरा स्नेह सबल हो, तू जननी मैं तेरा।

बस प्रेम धर्म है मेरा।

तू ही सन्तति पथ प्रदीप हो,
जगत दूर हो तू समीप हो,
वर्तमान तू ही अतीत हो, तेरा स्नेह घनेरा,

बस प्रेम धर्म है मेरा।

तुझसे ही जनजीवन पाया,
अकथ अतुल है तेरी माया,
कर आशीर्वाद की छाया, महाशक्ति! मै चेरा,

बस प्रेम धर्म है मेरा।

*

पुजारी

माँ तेरे पावन चरणों के हम एक अनन्य पुजारी।
जब करवट ले जग रहा जाग,
हमने गाया प्रिय विरह राग,
जब घर बाहर लग चुकी आग जागी चेतना हमारी। माँ तेरे. .
जागी हिंसा क्रूरता पगी,
अधिकार पिपासा सतत जगी,
सुन पड़ा विश्व में सभी ओर जय जयति जन्म भू प्यारी। माँ तेरे. .
हम कौन? हमारा कौन आज?
किसकी गुरूता पर रहे लाज?
हम रहें और तुम पराधीन, बस यही लांछना भारी। माँ तेरे. .
भयभीत न हों भीषण रण से
तिलभर न डिगें अपने प्रण से
अब आत्म ज्योति जग उठी, विश्व देखे वीरता हमारी। माँ तेरे. .
जग जीवन का सम्मान करें,
अब हमीं विश्व कल्याण करें,
मिल गया हमें गुरु आज 'लली' सत्कर्म सत्यव्रत धारी।
माँ तेरे पावन चरणों के
हम एक अनन्य पुजारी।

(9-2-1942)

मेरी अम्मां

एक बार ही मेरी अम्माँ क्षण भर को तुम आ जातीं,
अपनी इस अधीर 'मणियाँ' को कुछ तो धैर्य बँधा जाती।
मरने में क्या सुख था तुमको केवल यही बता जाती,
जीवन मरण अमिट है जग में इतना ही समझा जाती।
पत्र तुम्हारा लिखना "बेटी! मै अस्वस्थ हूँ आजाओ"।।
मै न गई, भूलूँ अब कैसे, अम्माँ तुम समझा जाओ।।
मुझे बुलाओगी अब कब तक मेरी माँ! बतला जाओ।
रोते ही रोते आकुल हूं, प्यार करो बहला जाओ।।
मुझ पर ही क्या उलझ रहे थे, प्रिय माता के निर्मल प्राण?
मुझे देखते ही जननी ने पाया इस जगती से त्राण ।।
लख नयनों की नीरव भाषा तड़प रहे थे मेरे प्राण।
हाथ पीठ पर फेर कहा जब 'हो बेटी तेरा कल्याण'।।
मुझ कृतघ्न कन्या की बातें, जिस माता को थी स्वर्गीय।
मेरी माता आज कहाँ है, मुझे समझती थी अदुतीय।।
अब वियोग में मैं रोती हूँ, मेरा रोना सबको भार।
मातृहीन होते ही देखा मैंने दुनियाँ का व्योहार।।
क्या जल जल उठता अन्तर में, क्यों फटती सी है छाती।
कैसी है यह हृदय वेदना प्रतिदिन बढ़ती ही जाती।।
पूज्य पिता लिखते प्रयाग से, 'बेटी अब तुम मत रोना'।
प्रिय सपूत काशी से लिखता, 'माता, धैर्य नही खोना'।।
धैर्य खोजने लगती हूँ जब इन शब्दों में बारम्बार।

हाय! न जाने क्यों आँखों में आजाते आँसू दो चार।।
उन्निस सौ चौंतीस ईसवी, मई मास, दिन मंगलवार,
थी उन्तिस तारीख खो दिया मैने प्रिय माता का प्यार।
भाव कहॉ पाऊंकविता के आज कहाँ भाषा श्रृंगार,
मैं लिखती हूँ तुम पढ़ लेना भग्न हृदय के कुछ उद्‌गार।।

(10-7-1934)

प्रबोधन

मत छेड़ सखी, मत छेड़ अरे! इस हृत्तन्त्री के मधुर तार।
सुन उथल पुथल हो जाय कहीं विधि रचना का सुन्दर श्रृंगार।।

भय है यह शान्त जलधि अपनी
लहरों पर शासन कर न सके।
वह महाप्रलय सी उमड़ चलें
किस विधि सूझेगा वार-पार।

सम्भव है शीतलता अपनी
सहसा सुनकर निशिनाथ तजें,
नीरव रजनी मध्यान्ह बने
मिट जाय विश्व से अंधकार।

यदि कोयल कूक तजे अपनी
नव ग्रीष्म मधुर बसन्त बने,
यौवन भी मादकता तजकर
हो प्रखर तेज सा एक बार।

वह अधर और मधु के प्रेमी
क्षण में कर्तव्य निहार चलें
भय है अबोध शिशु कूद पड़ें
रण में जननी की जय पुकार।

भयहारण दीनदयाल 'लली'
यदि क्षीर सिंधु से दौड़ पड़ें,
नादान! उन्हें सो लेने दे
वर्जित करती हूँ बार बार।

मत छेड़ सखी मत छेड़ अरे! इस हृत्तन्त्री के मधुर तार।

राम राज्य

विभावरी हंस कर कहती थी आज मुझे बतला दे
मेरी निर्मल चन्द्र प्रभा क्या और कहीं देखा है?
उषा सुन्दरी भी प्रभात में बोल उठी रंगमाती
कह दे मेरी स्वर्णरश्मि भी और कहीं देखा है?

देखा है हाँ देखा है,
जननी मुख मण्डल पर मैने यही दीप्ति देखा है।

यौवन सुना रहा था अपनी सुमधुर सुघर कहानी,
कह कर आओ यहाँ देख लो मेरा अद्भुत आना।
जहाँ एक पल भी न लगेगा मेरे दीवाने को।
मिट जाये यदि कहीं देख ले कलियों का मुसकाना।

तुम यहीं भूल मत जाना।
जननी जन्म भूमि पर यौवन न्योछावार हो जाना।

लेकर मादक रूप माधुरी अतुल शान्ति की रेखा
मुसकाता बोला बसन्त यों, अरे! मुझे भी देखा?
फूले फले प्रजाजन जिसके प्रतिपल मोद मनाते,
कह दो तुम्हीं कहीं जगती में मुझसा शासक देखा?

देखा है ऋतुपति देखा,
मैने अपने इसी देश में रामराज्य है देखा।

विजये

आओ विजये! फिर आई हो, सहमी सी सकुचाती सी,
एक बार फिर कभी न आई, वैसी ही मदमाती सी।
तेरी एक मधुर चितवन पर न्योछावर हो जाते प्राण,
पागल दुनियाँ दर्शन करती, हंसकर मंगल गाती सी।
विश्व व्यापिनी होती तेरी पायल नूपुर की झनकार,
भारत के वीरों को मिलती, विजये! तुम इठलाती सी।
पावें हम किस भाँति तुम्हारे प्रियतम वे करुणानिधि राम,
अबतो उन्हें भूलकर भी पतितों की सुरति न आती सी।
देख विरहिणी वेष उमंगें, कर जाती सहसा प्रस्थान,
कायर की कल्पना मात्र से तुम भी सदा लजाती सी।
क्यों आई थीं इस भूतल पर लेकर अपना मोहन रुप,
फिर क्यों कहाँ छिपी हो, आकुल प्राणों को तरसाती सी।
तुम ही मौन हुई हो सजनी। या रुठे अवधेशकुमार,
तज अभिमान सखी! मोहन को, फिर देखो मुसकाती सी।।
'लली'साध इतनी जीवन की, चाहो तो पूरी करना,
एक बार हमसे मिल जातीं, विजये गले लगाती सी।

(22-8-1933)

*

लेखक से

लिख दो अमर वीर की कृतियां पढ़ चरणों पर बलि जाऊँ
लिख दो दृढ़ उज्जवल चरित्र को जीवन का कुछ फल पाऊँ
लिख दो सजग राष्ट्र की बातें निर्बल उर में बल लाऊँ
लिख दो अटल अनन्त प्रेम को जग मे प्रेमी कहलाऊँ।

किन्तु अरे ओ सहृदय लेखक! भीषण कथा बचा देना।
कहीं न पाप -पंथ दिखलाकर पापी हृदय बना देना।।

लिख दो ऐसी गहन पहेली जिन्हें रात दिन सुलझाऊँ
लिख दो उस सुन्दर विनोद को भूला मन मैं बहलाऊँ।।
मुग्ध मोर सा नाच उठे मन भाषा भाव वही पाऊँ
कवियों की सुन्दर कविता सा मैं भी तेरा गुण गाऊँ।

अपने अमित पुण्य का लेखक! इतना फल पाने देना।
यदि चाहे आदर्श 'लली' आदर से अपनाने देना।।

*

मुक्त वैरागी

मत ढूँढो स्वदेश सेवक के जीवन की छोटी सी भूल,
जिसके सदा अमर कृत्यों पर हृदय हर्ष से जाता फूल।
जो न्योछावर हुआ देशपर, अपना या अपने को भूल,
बिरला भाग्यवान वसुधा में पाता उन चरणों की धूल।

जिसे कभी कह देते हो तुम, हाँ वह था अनुपम त्यागी।
यह रक्खो विश्वास हृदय में वही मुक्त था वैरागी।।

क्या कहते हो? भवसागर में तुम हो केवल बिन्दु समान,
किन्तु ध्यान दो तुम में ही तो मिलते है अनन्त भगवान।
तेरा सब कुछ तू न किसी का तेरा ही अगम्य यह ज्ञान।
कब होते हैं जगतीतल पर कितने ऐसे व्यक्ति महान।

हो असीम आनन्द, अरे ओ दुनियाँ के दुर्लभ त्यागी।
कहीं 'ललीं' तेरे दर्शन पा हो जावे यदि बड़भागी।।

*

नव कलिका

नव कलिका तुम कब विकसी थीं इसका मुझको ज्ञान नहीं,
हुई समर्पित श्री चरणों पर कब इसका कुछ ध्यान नहीं।
हृदय संगिनी सरल मधुरता में देखा अभिमान नहीं।
सच है गुण, धन, यौवन, मद का दुनियाँ में सन्मान नहीं।

इसी हेतु सब श्रेष्ठ गुणों से पूरित तुमको अपनाया।
नव कलिका जब तुमको देखा तभी पूर्ण विकसित पाया।।

नन्दन कानन में सुरभित होने की तुमको चाह नहीं,
हृदय बेधकर हृदयस्थल तक जाने को उरदाह नहीं।
मन्त्र मुग्ध से जग जन होवे इसकी कुछ परवाह नहीं,
इन पवित्र मुसकानों में है छिपी हुई वह आह नहीं।

प्रेममयी ! इस अखिल विश्व को अचल प्रेम से अपनाना।
यदि मिल जावें युगल चरण वह तुम उन पर ब लि हो जाना।।

प्रियनाम

१

तुम भाग के भाग न पाये हरे ! दिनरात तुम्हें ही निहारा करूँ
मन मन्दिर के पट बन्द किये अपनी रूचि से ही संवारा करूँ
जग जान सका इतना न 'लली' तुम ही पर तो जगवारा करूँ
तुम जानते हो छिप जाते हो क्यों प्रिय नाम तुम्हारा पुकारा करूँ

२

तुम प्रेम से हारे सदा ही रहे मैं सदा ही तो प्रेम तुम्हारा करूँ
मिल के भी मिले न 'लली' मुझको हँसते हो कि जीत के हारा करूँ
प्रिय की उस मन्द हँसी पर ही शत जीवन मैं बलिहारा करूँ
तुम आओ न आओ सुनो न सुनो प्रिय नाम तुम्हारा पुकारा करूँ

आशा

तुम्हीं कहो, मैं क्या कह दूँ ?
जब सहज हृदय यह मेरा–
पड़ गया कठिन लहरों में।
यही सुना है दीन बन्धु ने, अगणित दीन उबारा,
निज भक्तों की रक्षा के हित दुष्टों को संहारा।
चल गिरि गोवर्धन धारा
निज कोमल बाल करों में।
मोह तिमिर आच्छन्न हृदय में, क्षण में ज्योति प्रसारा,
जब देखा तब महिमामय ने, निज महिमा विस्तारा।
किस भाँति दया कर आये
अबला के करूण स्वरों में।
जो कुछ सुना 'लली' गीता में केवल वही सहारा।
कृपा सिंधु बतला दो कबतक आना यहाँ विचारा?
अब आशा बची हृदय में–
हैं प्राण शेष अधरों में।

माया

प्रियतम! यही न जाना मैंने,
मन तेरा कैसे पाऊं,
किन रत्नों से मोल चुकाकर,
उसी मोल पर बलि जाऊँ।

तेरे सुन्दर सजग चित्र को,
फिर देखूं फिर हर्षाऊँ,
तेरी मोहन मधुर हार पर,
मै मन ही मन मुसकाऊँ।

किसी भाँति यदि मेरे स्वामिन! वह शुभ दिन भी आ जावे,
ध्येय और आराधक में फिर भेद न दो का रह जावे।

कोई चित्रकार कहते हैं,
कोई गायक की अनुहार।
कोई मुझे सुकवि कहते हैं,
क्या जगती का भोला प्यार।

मै क्या हूँ कुछ नहीं नाथ! तू अपना वैभव आप सम्हार,
तेरी मूर्तिमती करूणा पर अचपल हो यह चल संसार।
तू है अखिल विश्व का पालक, तो मै हूँ क्षण भर छाया,
तू है पारब्रम्ह हे स्वामिन! मैं तेरी विरचित माया।

(-2-1933)

आव्हान

जीवन में ही आह्वान किया।
पाया पाकर मन मगन हुआ ममता पर मंगल गान किया।
जीवन में ही आह्वान किया।
धुँधला अतीत मैं क्या जानूँ,
मन कथित कल्पना क्यों मानूँ ;
मेरा तो प्रतिपल वर्तमान जिस पर जी भर अभिमान किया।
जीवन में ही आह्वान किया।
वह पार कहाँ यह पार कहाँ,
लहरों में है मँझधार कहाँ;
मैने इन अगणित लहरो की सौन्दर्य सुधा का पान किया।
जीवन में ही आह्वान किया
तुम क्या हो यह मैं क्या जानूँ
बाहर भी हो अन्तर में भी।
दुनियाँ में तुमको ही पाकर, दुनियाँ भर का सम्मान किया।
जीवन में ही आह्वान किया
जीवन है देन तुम्हारी ही तब क्यों न इसे मैं प्यार करूँ ?
मैने इस जग का, जीवन का,
जीवन भर सद्यश गान किया।
जीवन में ही आह्वान किया।
जग पाया है जीवन पाया तुमको पाकर क्या शेष रहा?
जीवन में ही जागृति पाकर
देने पाने का मान किया।
जीवन में ही आह्वान किया।

क्यो?

प्रिय तुम्हारे पद्म पद पर
भ्रमर मन भ्रमता रहा क्यों?

सरस, सरल, उदार, भावुक, भव्य, सदय, महान माना,
किन्तु प्रिय उर में तुम्हारे मैं कहाँ हूँ यह न जाना,

मत्त मन फिर भी तुम्हारी
चाहता समता रहा क्यों?

यदि पहुँच पाई न तुझ तक साधना अम्लान मेरी,
चाहता ही रह गया उर एक मृदु मुसकान तेरी,

आह! यह पागल पुजारी
माँगता ममता रहा क्यों?

विश्व के सौन्दर्य, वैभव, सुयश ने जी भर जगाया,
प्रकृति ने हँसकर कभी कुछ सजग सुन्दर गान गाया,

त्याग सब यह मुग्ध मन
तुम निठुर पर रमता रहा क्यों?

कौतुकी जग कर सकेगा व्यंग यदि सब कुछ सुनाऊँ,
जो तुम्हारी देन हैं वह वेदना कैसे छिपाऊं?

भक्त बे सुध मौन हो
आराधना करता रहा क्यों?

आज जीवन मुक्त हो कुछ मिल गया अपनत्व खोकर,
हँस पड़ी सहृदय 'लली' सहसा चली जब अमर होकर,

सरल तुम भी हँस पड़ो
यह जग जटिल बनता रहा क्यों?

(2-12-1940)

मधुर विश्वास

खेल रचा मैंने प्राणों का
तुम अविचल गम्भीर रहे;

विजय तुम्हारी हुई किन्तु-
क्या मेरी केवल हार रही?

कह दूँ क्यों अनजान रहे तुम,
ओ मेरे अन्तर्यामी?

यहाँ अमरता खेल रही है
प्राणों का व्यापार नहीं।

कहीं किसी दिन देख लिया था
जीवन का प्रतिबिम्ब हरे!

वही एक दिन मेरे लघुतम-
जीवन का श्रृंगार सही।

तुम हो अचल अजर अविनाशी
मै क्षण क्षण में हूं चंचल;

कुछ न सही पर हंसने वाली
दुनियां को उपहार सही।

बनी रहे मेरी चंचलता
बने रहें युग के प्रतिपल;

तेरे उस अनन्त वैभव का
हो न 'लली' विस्तार यही?

की अजस्त्र अमृत की वर्षा,
मुक्त हस्त होकर मैने,

कब तक शुष्क रहोगे तुम
यह क्षुद्र क्षणिक बौछार नहीं।

चलने दो इस विषम खेल को
एक मधुर विश्वास लिये;

जहाँ तुम्हारी विजय छिपी है,
है मेरा अधिकार वहीं।

(6-3-1940)

*

अपनी बात

मौन हूँ तो ओ सदय जग! मौन रहने दे मुझे अब।
क्यों सुनाऊँ विश्व को
अपनी अमित अविदित कहानी,
पीड़ितों की आह सुन
जिसने कभी पीड़ा न जानी।
मैं हँसी हूँ वेदना पर और हँसने दे मुझे अब।
इस हृदय की गोप्यतम निधि
देखना क्यों चाहते हो,
निठुर! सुन क्रन्दन किसी का
करूण राग सराहते हो,
सुन चुकी हूँ मैं जगत की कुछ न कहने दे मुझे अब।
क्यों बताऊँ गहनता का
एक जटिल रहस्य क्या है,
सरल! क्या तुम समझ लोगे
क्या पराजय विजय क्या है?
विश्व की इस क्रान्ति में भी शान्त रहने दे मुझे अब।
जग मुझे जाने न जाने
मैं जगत को जानती हूँ,
मौन हूँ प्रिय की मधुर
मुसकान मैं पहचानती हूँ।
जो न जान सकी 'लली' अनजान रहने दे मुझे अब,
मौन हूँ तो ओ सदय जग! मौन रहने दे मुझे अब।

(20-8-1940)

कौन हूँ मैं ?

आज मुझसे पूछता जग
क्या बताऊँ कौन हूँ मैं?
एक आलोकित सुपथ पर, एक गति विधि से चला है,
कौन जाने सजगता का श्रेय किस किस को मिला है।
क्यों रहा मुझसे विलग
यदि श्रान्त पल भर को न दूँ मैं।
मानकर भी मोहमय यह मोह में संलग्न क्यों है?
छोर पाने के लिये संसार सारा व्यग्र क्यों है?
छोर पाकर भी अरे!
यह चाहता क्यों व्यग्र हूँ मैं।
खोजता किसको रहा तिलमात्र भी तो हिल न पाया,
पालकर पीड़ा कभी प्रिय ध्येय से भी मिल न पाया,
क्यों सुने यदि मैं कहूँ
निज ध्येय में ही मग्न हूँ मैं।
सुन रही हूँ आदि युग से एक ही जीवन कहानी,
कौन सी निधि पा कहाँ मानव हृदय ने तृप्ति मानी;
रह गया मुझसे अपरिचित
चकित है क्यों मौन हूँ मैं।
आज मुझसे पूछता जग क्या बताऊँ कौन हूँ मैं?

(29-8-1942)

प्यार

विजय जीवन की कहूँ या
सरस मधुमय हार हो तुम?

भ्रमित जग भ्रमता रहा, सौन्दर्य तेरा लख न पाया,
थकित होकर चकित हो, फिर प्रिय विरह का गान गाया;

धन्य हूँ पाकर तुम्हें
इस हृदय के श्रृंगार हो तुम।

कौन तेरे रूप पर रीझा कभी क्या कह सका है,
प्रेम पारावर में निरधार होकर बह सका है;

आज भी जग क्यों न जाने
प्रिय स्वयं ही प्यार हो तुम।

प्राण पावन कँर रहे हो प्रिय यही क्या वेदना है,
आज तो उन्मत्त हूँ फिर चिर मिलन सुख कल्पना है;

मैं न जानूँ वेदना
भवसिंधु में पतवार हो तुम।

विश्व विस्तृत वृहत् प्रांगण मृदुल पग हैं सम्हलती हूँ,
समुद सस्मित अभय होकर संग ही संग खेलती हूँ;

जानती हूँ सबल हो
इस खेल के आधार हो तुम।

धन्य हो अणु अणु निवासी है अगम अभिनय तुम्हारा,
तुम निकटतम ही रहे यह विश्व सारा खोज हारा;

आज सीमित बन गये हो,
या अनन्त अपार हो तुम।

तुम हमारे या तुम्हारे ही हृदय में बस रही हूँ,
तुम हंसे ले विश्व को, मै विश्व को ही हंस रही हूँ;

मर्म प्राणों का न जानूँ
किन्तु प्राणाधार हो तुम।
विजय जीवन की कहूँ या सरस मधुमय हार हो तुम?

(30-7-1942)

*

रहस्य

हो रहस्यमय सुनती थी
पर क्या रहस्य लेकर आये;
ओ जीवन के चरम ध्येय!
तुम केवल प्रिय बनकर आये।

तुम महान हो मैं अजान हूँ,
इसका ही कब ज्ञान हुआ;
ओ अन्तरतम के वासी!
कब विभिन्नता का भान हुआ।

हँसी खिली मैं देख किन्तु
प्रिय तुम भी क्योंकर मुसकाये ?
ओ जीवन के चरम ध्येय!
तुम केवल प्रिय बनकर आये।

पल भर को भी समझ न पाई
तुम महान या मैं अनजान,
बीत रहे युग इस प्रयास में
विश्व सुने मेरा नवगान।

मेरी इस आकुलता पर क्यों नयन तुम्हारे भर आये;
ओ जीवन के चरम ध्येय! तुम केवल प्रिय बनकर आये।

'तू' क्या 'मैं' क्या, जान सकी कब
पा न सकी पथ का निर्देश,
'मैं ही हूँ तू' इतना ही सुन
सब हँसते कैसा यह देश?

जगती के इस व्यंग्य हास्य पर तुम क्यों हँसकर इठलाये;
ओ जीवन के चरम ध्येय! तुम केवल प्रिय बनकर आये।

तेरा क्या रहस्य कैसा है
अबतक जान सका है कौन,
मै तुमसे ही पूछ रही हूँ
तुम गम्भीर बने से मौन;

अब रूठूँगी आज भले ही मौन तुम्हारा पछताये,
ओ जीवन के चरम ध्येय! तुम केवल प्रिय बनकर आये।

जगती के रहस्य तुम!
मेरे इस उर के अक्षय श्रृंगार;
'लली' सरल इस अखिल विश्व पर
बिखरा देना अपना प्यार।

पद पद्मों के आस पास बस मन मधुकर यह मँडराये।
ओ जीवन के चरम ध्येय! तुम केवल प्रिय बनकर आये।

(18-7-1940)

पथ पर

प्रिय तुम्हें लेकर,
न जाने क्यों चली अनजान पथ पर।

विश्व को सौन्दर्य तेरा पूछने पर क्या बताऊँ?
और अन्तर की असीम, अचिंत्य गति कैसे सुनाऊँ?

मैं तुम्हीं से कह सकी हूँ,
प्राण हैं तुम पर निछावर।

मैं अबुध यह भी न जानूँ वेदना का राग कैसा?
ओ मेरे अजर अमर असीम का अनुराग कैसा?

जानती हूँ खेलती
मेरी हंसी तेरे अधर पर।

कब? कहाँ? किस हेतु था मैंने किया आह्वान तेरा,
और कह दो अब कहाँ हैं, वह सुदृढ़ अभिमान मेरा;

आज गौरव पा चुका,
जब रेणु कण तेरे चरण पर।

राग का अनुराग का सुविराग का भी तत्व क्या है,
और यदि मैं हूँ कही मेरा कहाँ अस्तित्व क्या है?

अब वता दो चल रही हूँ
मैं किसी अज्ञेय पथ पर।

पा चुकी है जब 'लली'कुछ प्रेममय इतिहास तेरा,
कह सकूं तो यह निठुर जग क्यों करे उपहास मेरा;

अमिट होकर ही रहूँगी
प्रिय हृदय के विमल पट पर।

प्रिय! तुम्हें लेकर न जाने क्यों चली अनजान पथ पर।

(4-10-1941)

याचना

चूम लूं तेरे चरण यह एक–
मेरी याचना ही।
किन्तु तुम भी दे सके प्रिय, भीख केवल वेदना ही।
कह रहा संसार तुम मेरे सदय! मुझपर सदय हो,
है दया मुझ पर तुम्हारी, क्या विकलता कौन भय हो;
आज इतना ही बता दो
सत्य है या कल्पना ही? चूम लूँ तेरे चरण . . .
दे रहे हो विश्व को अनवरत दान उदार मेरे!
और मुझ को देखकर क्यो मौन हो संसार मेरे!
कौन जाने प्रिय मिलन का –
सेतु हो अवमानना ही। चूम लूँ तेरे चरण . . .
जानकर भी मै न जानूँ तुम अपार महान हो तुम,
और सारे विश्व के बल बुद्धि वैभव ज्ञान हो तुम;
इस हृदय के कौन हो?
अब शेष है यह जानना ही। चूम लूँ . . .
देखना क्या चाहते हो इस अकिंचन के हृदय में,
जो न जान सका 'लली' क्या है पराजय क्या विजय में;
क्या करूँमैं नेह की
जब बन गई उर भावना ही। चूम लूँ...

(1-9-1941)

क्या तुम मुझे पहिचान पाये ?

मै न जान सकी तुम्हें,
क्या तुम मुझे पहिचान पाये?
चाहती हूँ जग न जाने मत्त की आराधना को
विश्व में कोई कभी देखे न मेरी साधना को;
तुम छिपे जिस भाँति हो
मैं भी रहूँ उर में छिपाये। मै न जान सकी ...
मन मतंग उलझ चुका अब चेतना उलझी रहे क्यों,
एक बंधन की सरसता सहज ही सुलझी रहे क्यों?
रह सके हो दूर क्या?
माना कभी हँसकर न आये। मै न जान सकी...
विषमता भी है जगत में मैं इसे कब जानती हूँ,
तुम महान अपार, मैं भी एक कण यह मानती हूँ;
मैं न यदि भूली तुम्हें
किस क्षण मुझे तुम भूल पाये ? मैं न जान सकी...
मधुरतम बनता रहा उल्लास, हास, विलास मेरा,
मर्म जाने कौन यह इसमें छिपा आभास तेरा;
मै तुम्हारी ही रही
तुम भी 'लली' मेरे कहाये। मैं न जान सकी...

(7-4-1941)

साधना

साधना मेरी नहीं
मैं ही तुम्हारी साधना हूँ।
क्यों पहुँच पाऊँ न तुम तक,
आप ही आराधना हूँ।
इस जगत के किस सरल ने था विरह का गान गाया,
क्यों न अपना प्राणधन उनमत्त हो उर में बसाया;
कामना मैं क्या करूँ
मैं ही निरन्तर कामना हूँ।
जग प्रफुल्लित हो उठा जागीं कभी यदि भावनायें,
मन मयूर प्रमत्त होकर देखता नव कल्पनायें;
जागती चिर भावना
मैं ही अकल्पित कल्पना हूँ।
अजर हो तुम अमर हो प्रिय किन्तु मैं प्रतिपल बदलती,
रीझती, खिझती, उलझती, रूठती, हँसती, मचलती;
एक तुम मेरे रहो,
मैं ही अनेकों जन्मना हूँ।
एक दिन जब आ बसें उर में 'लली' आराध्य मेरे,
देखकर मैंने कहा, जग में सफल श्रम साध्य मेरे;
आज मैं ही बन गई
प्रिय की मधुर आराधना हूँ।
साधना मेरी नहीं,
मैं ही तुम्हारी साधना हूँ।

(11-9-1944)

आराधना

साधना भी रह गई है एक असफल साधना ही।
प्रिय अपरिचित ही रहा
प्रिय बन गई है कामना ही।
यदि बता दूँ अभय होकर हृदयतल की भावनायें;
सफल या असफल रहीं है नित्य नूतन कल्पनायें;
हँस पड़ेगा विश्व
होगी प्रीति की अवमानना ही।
निकट से भी निकटतम प्रिय क्यों विरह का गान गाँऊ ;
अचल अजर अनिंद्य मन की वेदना कैसे सुनाऊँ ;
मौन रहकर कर सकूँ यदि
अथक अविचल याचना ही।
एक अक्षय अगम्य पथ पर अभय निश्चल मैं खड़ी हूँ;
मौन हूँ पर विश्व देखे चेतना इस पर अड़ी हूँ;
विजयिनी होकर रहेगी
एक दिन उर भावना ही।
प्रिय अपरिचित साधना भी अपरिचित होकर रहेगी;
सुन सकेगा विश्व जब यह मौनता हँसकर कहेगी;
देख चिर परिचित रही है
भक्त की आराधना ही।

(10-2-1944)

प्राण की बाजी

आज बाजी चढ़ चुकी है प्राण की तेरे चरण पर।
प्यार को भी कौन जग में
आज तक ठुकरा सका है
कौन अपने अन्यतम्
उन्मत्त के घर जा सका है ?
मैं निछावर आज उर की शांति के नीरव हरण पर।
कब कहाँ है प्रेम!
मुझसे प्रेम भी तुम कर सकोगे,
या कभी आह्वान पर
सनमान मेरा कर सकोगे;
मन विहँसता ही रहेगा किन्तु अपने मन हरण पर।
खेलते ही तुम चलो प्रिय
यदि तुम्हारा खेल है यह;
हाँ निठुरता वा सरलता का
सुदृढ़तम मेल है यह ;
है नया यह लेख जीवन पृष्ठ के नवअवतरण पर।
प्राण से ही खेल कर
फिर मान किससे कर सकोगे,
मैं नहीं तुम नित नया–
अभिमान किससे कर सकोगे;
क्या करोगे याद मेरी हँस पड़ेगी जब चरण पर।
आज बाजी चढ़ चुकी है प्राण की तेरे चरण पर।

(4-10-1940)

तुम

मेरा तेरा चिर संग सखे !
मैं विरह गान क्यों गाऊं ?
तुम जहाँ रहे मिल गये मुझे,
मन क्यों न वहीं उलझाऊं ?

मेरा मन था शिशु सा अबोध
तुम सुमनों में मुसकाये।
मैं हंसी कली सी खिली,
अरे ! तुम मधुकर से मंडराये।

हो गई चकित यह देख तुम्हीं तुमको इस जग में पाऊं
मेरा तेरा चिर संग सखे ! मैं विरह गान क्यों गाऊं ?

मैं नवल लजीली बधू बनी,
तुम प्रियतम बन कर आये ;
मैं अरूण उषा सी हुई,
और तुम दिनकर से मुसकाये;

अपने निजत्व को त्याग न क्यों मैं तुममें ही मिल जाऊँ ?
मेरा तेरा चिर संग सखे ! मैं विरहगान क्यों गाऊँ ?

सुन रहे देश की तुम पुकार,
मैं कर पूजा मनमानी;
हो गई मुग्ध छबि लख अपार
दुनियाँ कहती दीवानी।

बंधन कर सारे छिन्न, न क्यों श्री चरणों पर बलि जाऊँ
मेरा तेरा चिर संग सखे ! मैं विरहगान क्यों गाऊँ?

तुम अजर अमर हो रहो,
और मैं नित नूतन माया हूँ ;
जग रही तुम्हारी ज्योति,
किन्तु मैं भी अभिन्न छाया हूँ ;

पाकर असीम आनन्द 'ललो' सीमा में क्यों बंध जाऊँ ?
मेरा तेरा चिर संग सखे ! मैं विरहगान क्यों गाऊँ ?

(8-8-1939)

*

परिवर्तनमय जग

क्षण–क्षण परिवर्तनमय जग में क्या पीड़ा है क्या रोदन?
पीड़ा कब कितनी जानी ही
चिरसुख के दीवानों ने ?
पीड़ा का क्या परिचय पाया
प्रियतम के मस्तानों ने ?

उनके प्रति होता रहा सदा सुख का ही नित नव नर्तन।
क्षण–क्षण परिवर्तनमय जग में क्या पीड़ा है क्या रोदन ?
साधक के अडिग साधना पथ में
कब आईं बाधायें ?
वह थे उनके सुख साज सजनि!
जिनको समझी बिपदायें;

अणु–अणु में है आनन्द हो गया जहाँ सहज मन पावन।
क्षण–क्षण परिवर्तनमय जग में क्या पीड़ा है क्या रोदन ?
आने में भी थी शान्ति 'लली'
जाने का है सुख सपना;
जो अखिल विश्व में देख रही
वह सब कुछ मेरा अपना।

मंगलमय का वरदान यही मंगलप्रद सब जड़ चेतन।
क्षण क्षण परिवर्तनमय जग में क्या पीड़ा है क्या रोदन ?

पीड़ा को पीछे छोड़ पा सकी हूँ –
सुख का मुसकाना।
मेरे जीवन के ध्येय !
तुम्हीं आकर मुझसे मिल जाना।

स्थिर होकर रहना सीखो सुन्दरतम ओ भोले मन!
क्षण क्षण परिवर्तनमय जग में क्या पीड़ा है क्या रोदन ?

*

दुनियाँ

मैंने देखा है दुनियाँ का,
हँसना, खिलना, मुसकाना;
एक बिन्दु से सरवर सरिता
बढ़कर सागर बन जाना।

सरल, अबोध, चपल शिशुओं का
गुण गुरुता में यश पाना;
अमर बीर बन श्रेष्ठ अलौकिक
दुनियां का ही कहलाना।

जगती के घन अंधकार में
मैं उनको कैसे कह दूँ;
जिनका ध्येय बना जीवन में
प्रखर ज्योति का बिखराना।

राग रंग में प्रणय बिरह में
मत्त भला कैसे मानूँ;
जन्म भूमि पर राष्ट्र धर्म पर
देखा है बलि हो जाना।

मानूँ कैसे अंध स्वार्थी,
मोह वासनामय इसको;
दुनियाँ से ही तो सीखा है
इस दुनियाँ में मिल जाना।

मैं अपनी प्यारी दुनियाँ का
क्यों निर्मम उपहास करु;
मैंने देखा है करूणा से
नयन किसी के भर आना।

उषा हँसी कलियाँ मुसकाई
सरितायें गम्भीर चलीं;
मैंने भी दुनियाँ में रहकर
प्रियतम का पद पहचाना।

इस दुनियाँ से ऊब भागकर
मर जाना मैं क्यों चाहूँ;
'लली' देखती है दुनियाँ का
जीवित रहना सिखलाना।

मैंने कब जाना चाहा है
दुनियाँ के उस पार हरे!
ओ मेरे आराध्य इसी तट पर
तुम मुझसे मिल जाना।

(30-8-1940)

*

दीपक

तुम तेजवन्त तुम दीप्तिमान,
तुम प्रतिभा के उज्ज्वल विकाश ;
तुम दयावन्त तुम धीर वीर,
तुम रखते हो अपना प्रकाश।

पागल जग कैसे बोल उठा,
जलता है, दीपक जलता है;
क्या मैं भी जलना ही कह दूँ ?
वह तो है तेरा मधुर हास।

निष्ठुर मानव ने स्वार्थ सहित,
युग–युग से तुझे जलाया है;
पर वीर तुही है धन्य,
उन्हें हँस–हँस देता रहता प्रकाश।

दुनियाँ भर का अनुराग लिये
भीतर बाहर भी आग लिये;
अपने हित अपना त्याग लिये,
लखता सुख दुख वैभव बिलास।

उन कीट पतंगो के जलने से
समता तेरी कौन करे;
जिनका तुझसे मिल जाने का,
क्षण भर का था निष्फल प्रयास।

उनका ही तेरा संग सदा,
तेरे जलने से शान्ति जिन्हें ;
वे निठुर जलाते रहते हैं,
पर कहाँ चाहते हैं विनाश।

जलता रह, दीपक जलता रह,
दुनियाँ से नाता रखता रह;
तूने वह आग छिपाई क्यों,
जिसका पाना अनुपम विकाश।

हँस हँसकर दीपक जलता जा,
उनको ही राह दिखाता जा;
जो तुझे जलाने वाले हैं,
जिनके हित तेरा अमर हास।

(2-8-1939)

*

दीपमालिका

ओ दीप मालिका ! दयामयी ! ओ सदा सुहागिनि बाला !
आई हो लेकर आज सजनि ! तुम किन दीपों की माला ?

मैं मंत्रमुग्ध सी देख रही हूँ यह तेरा मुसकाना,
बतला दे सखि ! इस हँसने का मैंने कुछ मर्म न जाना।

उस युग में भी तुम आई थी किस विधि था देखा भाला,
जब सजा रही थी रामबधू हँस हँस दीपो की माला।

राधारानी के दीपों में तुमने क्या जादू डाला,
जब मंत्रमोहिनी जगा रहा था सजनि ! नन्द का लाला।

फिर वीर शिवा, राणा प्रताप को है तुमने ही देखा,
प्रति वीर वधू के रोम रोम की अमिट तेज की रेखा।

जिनका यश सुन सुन शत्रु गणों की दहल उठी थी छाती
उनके दीपों में दीप मालिका ! तुम निर्भय मुसकाती।

श्री विष्णु प्रिया की सहज लाड़िली ! हृदय कहाँ यह पाया,
सबके प्रति इस तेरे उर में है कितनी ममता माया।

तेरे ही हित इन दीपों को मैंने भी आज सजाया,
तू हँसती है मैं भी हँसती हूँ केवल मर्म न पाया।

(25-9-1939)

वह मतवाला

हँसकर बोला वह मतवाला आओ मेरी मधुशाला,
कितने ही पीते रहते हैं भर भर प्याले पर प्याला।

एक घूंट पीते ही तुम भी भूल यहाँ सब जाओगे,
मैं हूँ कौन ? कहाँ आया हूँ ? फिर था क्या करने वाला।

होली ही सी अतुल सम्पदा क्षण भर में जल जायेगी,
तब न तुम्हें पहिचान सकेगा फिर कोई पीने वाला।

दुनियाँ को तुम त्याग चलोगे त्याग तुम्हें देगी दुनियाँ,
अंतर ज्वाला से जल जलकर बोलोगे हा ! मधुशाला।

धर्म, कर्म, जीवन, जागृति सब पल भर में हत हो जाये,
विष का नाम बताते हैं मधु, विष शाला ही मधुशाला।

वह देखो बैठा है वन में हरि का जन हरि ध्यान किये,
विश्व शान्ति के लिये निरन्तर फेर रहा मन की माला।

दुनियाँ तो न उसे देखेगी, वह दुनियाँ को देख रहा,
बने रहें जगती के जन धन तप करता वह मतवाला।

जननी पदपंकज का सेवी सिंह सरिस यों गरज उठा,
साहस हो तो बढ़ो चलो लो देश प्रेम का भर प्याला।

जीवन की सुषुप्त अभिलाषायें पल भर में जाग उठें,
एक बूंद पीते ही तुझको देश कहेगा मतवाला।

मदिरालय में राग रंग में मूढ़ चेतनाहीन हुआ,
आँख खोलकर देख अरे ! अब जगती की जलती ज्वाला।

जहाँ पेट को अन्न नहीं है तन ढकने को वस्त्र नहीं,
उन तक कैसे पहुँच सकेगी सर्वनाशिनी यह हाला।

जिसकी जननी हो बंधन में जिसके बन्धु तड़पते हों,
वह भी कैसे सहन करेगा हाला प्याला मधुशाला।

तोड़ सको जननी का बंधन जोड़ सको जग से नाता,
दुनियाँ हो कृतज्ञ तुझको ही पहनायेगी जयमाला।

(8-8-1938)

*

कवि

अमर है गुरुता तुम्हारी, सुयश पारावार हो कवि!
शान्ति के तुम हो विधायक,
क्रान्ति के नायक तुम्हीं हो;
विश्व की वाणी तुम्हारी
मर्म के गायक तुम्ही हो;
प्रीति का परिचय पुरातन, प्रेम पर बलिहार हो कवि !
अमर प्रिय के तुम उपासक,
अजर तेरी भावना हैं,
अडिग पथ के पथिक पावन,
अथक तेरी साधना है;
बज्र सी दृढ़ता तुम्हारी, पुष्प से सुकुमार हो कवि !
नियति के कौतुक अगोचर,
उर तुम्हारा विमल दर्पण,
देखकर प्रतिबिम्ब चित्रित
कर दिया जग को समर्पण;
हृदय के अद्भुत चितेरे, सत्य के आधार हो कवि !
कवि ! तुम्हें पाकर, हँसी कलियाँ,
उषा भी मुस्कुराई,
मौन निशि ने आह भरली,
व्यथा लहरों ने सुनाई;
विश्व ही सौन्दर्य तेरा, विश्व के श्रृंगार हो कवि !
है अमर गुरुता तुम्हारी, सुयश पारावार हो कवि ?

(29-11-1941)

उर के बन्दी

इस उर के बन्दी जीवन धन।
केवल तुम्हीं जान सकते हो है विशाल कितना यह लघु मन।
इस उर के बन्दी जीवन धन।
पीड़ा का वह मर्म न जाने जहाँ स्वयं तुम अधिवासी हो,
क्यों जग जाल जर्जरित देखे, देखा यदि छवि अविनाशी हो,
जग तुमको अतीत सा देखे,
तुम देखो मधुमय लघु बंधन! इस उर के . . . .
पीड़ा का पथ क्योंकर जाने प्रियपद का अविचल दीवाना,
जग नीरव रजनी के तम में देख रहा शशि का मुसकाना ।
तुम असीम हो तुम अनन्त हो,
किन्तु तुम्हीं मेरे संचित धन।
अबल पथिक पथ बाधायें लख आकुल हो सहमे पछताये
अज्ञ, अतीत, अल्प अनुभव पर नाहक शत शत अश्रु बहाये।
प्रेम मिलन में प्रिय दरशन में
आप स्वयं बन जाये बंधन।
तुम अजेय हो तुम अपार हो विश्व 'लली' यह समझ न पाया,
विरह मिलन की चिर आशा में तुमने ही सबको भरमाया।
किन्तु तुम्हीं मेरे बन्दी हो,
इतना ही मेरा अपनापन।

(28-4-1940)

अशरण शरण

अशरण जन सहज शरण,
भवभय तम पुंज हरण!

श्रमित, भ्रमित, थकित, चकित, अस्थिर अतिश्रान्त, असित,

चंचल चित कुटिल प्रगति,
केहि विधि मोहि देहु शरण। अशरण.....

माया मद पियत छकित मोह लागि जीव जियत,

कपटी मन दम्भ करत,
देखत तुम श्याम वरण। अशरण जन .....

अवगुन निसि द्यौस गहत, सरल जगत भूलि रहत,

मन सों मैं कुछ न कहत,
रसना रट शरण शरण। अशरण .....

जग सों नव नेह जुरत, प्रभु सों मन दूरि दुरत,

अब उबारि लेहु 'लली'
माँगति है चरण शरण।

अशरण जन सहज शरण, भव भय तम पुंज हरण।

(31-1-1942)

पान्च जन्य

मोहन! तुमने ही फूँका था द्वापर में अपना पान्च जन्य।
जिसको सुन जागी वीरशक्ति हो गई आत्म चेतना धन्य।
था युद्ध क्षेत्र का सजा साज, बन गया वही फिर कर्म क्षेत्र,
उस आत्म ज्योति के प्रखर तेज में देखा बिस्तृत धर्म क्षेत्र।
छिप गया कहाँ था धर्म नाथ ! जब तुम्हें सिखाना पड़ा ज्ञान,
अर्जुन, गंगासुत से महान, हो गये कर्म से थे अजान!!
ज्ञानी ध्यानी सब थे अचेत सुन पड़ा तुम्हारा शंखनाद,
पृथ्वी तल भर में गूँज उठा कर्तव्य कर्म का जय निनाद।
सुख दुख शुभकर्म अकर्मों के केवल कर्ता हो तुम्हीं नाथ!
पर कर निमित्त कारण हमको मंगलमय कर देते सनाथ।
कर्मों का ही आधार हमें तुम निराकार तुम निर्विकार;
हम कर्मशील प्राणी जन की सुन लेते हो बहुधा पुकार।
हम समझ नहीं पा रहे आज करुणामय की शिक्षा अनूप ;
प्रतिशोध और प्रतिहिंसा का आकर देखो अब बृहत रूप।
जग धर्म कर्म से परे आज बन रहा नाथः अधिकार क्षेत्र;
मानव मानव के हेतु रच रहा है भीषण संहार क्षेत्र।

दुख देकर सुख की खोज हरे!

सुख, सौख्य, शान्ति का भान नहीं;

रखती है मानव जाति आज

मानवता का अभिमान नहीं।

करूणानिधि केशव एक बार

अब और बजा दो पान्चजन्य;

सुन जाग उठे कर्तव्य ज्ञान,

हो जाय 'लली' यह धरा धन्य।

(5-8-1939)

*

दीनबन्धु

तुम दीनबन्धु तुम दया सिंधु,
मुझ पतित अधम को लो उबार;
ओ अखिल अगोचर अमिट अजर!
नत हूँ चरणों पर बार बार।

मेरे निर्बल श्यामल उर में,
अपनी प्रकाश रेखा भर दो;
मैं उस प्रकाश में देख सकूँ,
मन मन्दिर की गरिमा अपार।

मद, मोह, ईर्षा, दम्भ द्वेष,
अब दूर करो मुझसे भगवन,
मैं जग की हूँ, अपने जग का–
भर दो इस उर में अतुल प्यार।

आकाश, धरातल, जल, थल में,
सौन्दर्य तुम्हारा देख सकूँ ;
अणु अणु में तुमको पा जाऊँ
मेरे विराट मेरे अपार!

ओ विश्व नियन्ता विश्वम्भर,
ओ विश्व मात्र के प्रतिपालक!
मुझ पर भी दृष्टि दया की हो,
गुरुवर उर के अक्षय श्रृंगार।

(10-8-1941)

जीवित जीवन

रवि आया मृदु मुसकान लिये,
ऊषा नव स्वर्ण विहान लिये,

सुन्दर बिहंग बालायें भी–
स्वागत का अनुपम गान लिये,

कलियाँ बिखराती पुष्पराग;
जगती के जीवन जाग जाग।

उठ सुन अमरों का अमर गान,
पूजित जननी का आह्वान,

नव जय निनाद उन वीरों का,
जिनकी तुझ पर ममता महान,

जिन पर न्योछावर शत विराग;
मानव के जीवन जाग जाग।

प्रिय के पद तल तक जाना है,
कुछ देना है कुछ पाना है,

अपने संचित बैभव में से–
कुछ हँस हँसकर बिखराना है।

भर आँख देख अपना सुहाग;
अन्तर के जीवन जाग जाग।

जग जाग्रत है अपना सा है
सब सत्य यहाँ सपना क्या है;

प्रिय निकट और पथ दूर हरे!
यह मधुर रहस्य बना सा है,
अविरत है जिसका रंग राग,
मानस के जीवन जाग जाग।

मानवता का धन मिल जाये,
गर्वित होकर माँ मुसकाये,

मैं अमर और तू अमर 'लली'
यह विश्व अमरता पा जाये।

उठ एक क्षणिक आलस्य त्याग,
ओ जीवित जीवन जाग जाग।

(10-2-1940)

*

भूले राही

भूले राही अनजान रुको !
तुम कहाँ चले दुर्गम पथ पर
है जहाँ आदि या अन्त नहीं ;
जिसका न छोर मिल सका कभी,
अब ओ समीप के भान रुको
भूले राही अनजान रुको।

तुम कहाँ चले यह अन्धकार है,
या प्रकाश की चकाचौंध ;
जब यही न समझे ओ पागल
तब जाग्रति के अभिमान रुको,
भूले राही अनजान रुको।
तुम कहाँ चले यह हरित भूमि है,
शून्य गगन से मिली जहाँ,
किस दृग मरीचिका पर भूले
ओ शैशव के अज्ञान रुको,
भूले राही अनजान रुको।
तुम कहाँ चले हो उसे खोजने,
जो अणु अणु का वासी है ;
देना है देते चलो अरे,
पाने को निर्मम गान रुको,
भूले राही अनजान रुको।

तुम कहाँ चले जग जटिल पहेली
यह किसने सुलझाया है ;
किसने कब किसको क्या समझा,
उर के मिथ्या अनुमान रुको
भूले राही अनजान रुको।

उस अचल अजर की अमर ज्योति में
पड़ती किसी छाया है
अब ज्योतिर्मय कर दो प्रकाश
ओ माया के तूफान रुको,
भूले राही अनजान रुको।

तुम कहाँ चले जग आदि काल से
रहा खोजता बार बार
किसने पाया किसने माना
बन गई यहीं पर जीत हार

यह हार हमारी विजय रहे मंगलमय के वरदान रुको
भूले राही अनजान रुको।

अद्भुत प्यार

भूले विश्व चेतना भूले, भूले यह सारा संसार।
पथ की विकट गहनता भूले, भूले सुख दुख का व्यापार।
मैं क्या हूँ इतना भी भूले, फिर भूले ममता निस्सार।
प्रतिपल आती हुई काल की भूल चुके भीषण हुँकार।
उर की असह वेदना भूले और सत्य मिथ्या का भार।
ध्येय ! तुम्हारे श्री चरणों का कभी न भूले अद्भुत प्यार।।

(9-5-1946)

किस हेतु मुझे पहिचाना

संध्या का नव अवगुंठन,
ज्योत्सना का मुसकाना।
कवि कहां लिख सका अब तक
मेरे प्रियतम का आना।।

जिसके सम्मुख नित नत है,
शत शत प्रकाश की रेखा।
साधना निरत तूने भी
क्या उस प्रकाश को देखा ?

ओ चित्रहार रीती है
सौन्दर्य सुधा की प्याली
चित्रित न कर सका तू भी,
यदि उन अधरो की लाली।

उन मदिर अलस नयनों का
उन्मत्त प्रणय आवाहन।
रह गया किसी हृदपट पर,
बस एक मधुर स्मृति सा बन।

मैं क्या जानूं जग क्या है
क्या है यह मन दीवाना।
ओ प्राणों के पागलपन
किस हेतु मुझे पहिचाना।।

(11-5-1946)

नव निर्माण

विश्व के चिर ध्येय स्वागत, राष्ट्र के कल्याण स्वागत।
देश के उत्थान स्वागत, सिद्धि के अभिमान स्वागत।
अब कहेंगे साधना की,
एक बीती सी कहानी;
अब सुनेगे साधकों ने,
वेदना क्योंकर न जानी;
अब करेंगे बन्दना केवल रही
जिनकी निशानी;
अमर है युग युग न हो,
जिनकी सुयश गाथा पुरानी;
नाचकर मन मोर बोला, ओ ! नये निर्माण स्वागत।
अब सुनेगा विश्व,
जननी वन्दना के गान मेरे;
कल्पना साकार होगी,
और भाव महान मेरे;
आज जिनसे बन रहे हैं,
सर्वनियम बिधान मेरे;
है वही संचित युगों से,
धर्म कर्म प्रधान मेरे;
क्यों न जग हँसकर कहेगा, राष्ट्र के चिर प्राण स्वागत।

युग युगों से मौन बीणा,
तार कौन मिला रहा है;
कौन अपना स्वर मधुर ले,
राग नूतन गा रहा है;
आज सोई चेतना को,
कौन सजग जगा रहा है;
यह मधुर संदेश देता,
स्वर्ण सा युग आ रहा हैं।

अब हमारी चेतना के ओ ! अमर सम्मान स्वागत।
देश के उत्थान स्वागत, सिद्धि के अभिमान स्वागत।

(2-12-1947)

प्रिय का निमंत्रण

आज चिर निस्तब्धता में जब मिला प्रिय का निमंत्रण।
हृदय की सोई व्यथा जागी चकित होकर उसी क्षण।
सफल लख निज साधना,
यह चपल मन क्यों है अचंचल;
क्यों न अपने आगमन की
सूचना देता नवल पल ?
क्यों तुम्हें क्या हो गया यह पूछनें आये सजल कण।
आज प्रिय चिर मौन मेरा
आज प्रिय निस्तब्धता ही।
प्रिय हुई चिर संगिनी सी
वह किसी की निठुरता ही।
अब मुझे प्रिय बन गया इस विश्व का ही एक कण कण।
कौन कहता है "अरे ! यह
मानिनी का मान कैसा ?
अब विहँस कर खिल उठो
बड़ भागिनी अभिमान कैसा ?"
आज द्रुत गति से चलो पर वन्दना कर लो इसी क्षण।
मन चपल है उर अचंचल
उभय गति में तथ्य क्या है,
मैं नही यह जानती थी
प्रिय विजय में सत्य क्या है;
चाह कर भी कह न पाई मैं अहा ! स्वागत निमंत्रण। *(29-12-1948)*